पाकिस्तान, इरान और इराक़ में हिन्दी फ़िल्मों का स्मगलर

मयूर सुरेश

बृहस्पतिवार, 29 सितंबर 2005

हेलो पीपीएचपी वालों!

मैं उम्मीद करता हूँ कि आप सब ख़ैरियत से होंगे। एक टैक्सी ड्राइवर से पिछली रात कुछ ऐसी दिलचस्प बातें हुई कि बस उसे यहाँ लिखने से खुद को रोक नहीं पा रहा हूँ! सच बोलते हुए हमेशा अच्छा लगता है। दरअसल हुआ यूँ कि मुझे हिन्दी बोलता हुआ सुन कर टैक्सी ड्राइवर ने मुझसे पूछ ही लिया कि क्या मैं हिन्दुस्तानी हूँ। जवाबन मेरे हाँ कहने पर उसने बताया कि उसे हिन्दी फ़िल्मों से मुहब्बत रही है। बस इसके बाद तो बातों का सिलसिला चल निकला, और लीजिए फिर बातें ही बातें।

मूलतः गुजरात के किसी इलाक़े में रहने वाला अबू का परिवार बँटवारे के बाद कराची चला गया। वहीं अपनी तमाम उम्र गुज़ारने के बाद 1975 में अबू ने मर्चेन्ट नेवी ज्वाइन कर ली। उसके बाद वह इरान, इराक़, हिन्दुस्तान, सिंगापुर, हॉङ्गकॉङ्ग, की यात्राओं पर निकलने लगा। कभी-कभार ऑस्ट्रेलिया और मुश्किल से कभी अमेरिका का चक्कर भी लगाने लगा। उसके जहाज़ पर पाकिस्तानी ज़्यादा नहीं होते थे। आम तौर पर मध्य-पूर्व, इरान और हिन्दुस्तान के यात्रियों की संख्या ज़्यादा होती थी।

कराची से मुंबई की अपनी पहली ट्रिप में मुंबई पहुँच कर उसने पहली बार 'शोले' देखी। उसने बताया कि वह अपने दोस्तों के साथ कई थिएटरों में घुसने की कोशिश करता था लेकिन हर बार टिकटें पहले ही बिक चुकी होती थीं। आख़िरकार उसने वादा (शायद वह बांद्रा कहना चाह रहा था) के एक थिएटर मैनेज़र से मुलाक़ात की और ये कहा कि उन लोगों को उसी रात रवाना होना है और रवानगी से पहले हर हाल में वो ये फ़िल्म देखना चाहते हैं। मैनेजर ने उन्हें 'प्रोजेक्शन-रूम' में बिठा दिया और वहीं बैठकर उन्होंने यह फ़िल्म देखी।

मुंबई से वह इरान गया। वहाँ पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि लोग तो वहाँ भी 'शोले' देख रहे थे। उसने बताया कि शाह की सत्ता समाप्ति के पहले तक औरतें मिनी-स्कर्ट्स पहनती थीं, हिन्दी फ़िल्में देखती थीं और फ़्रेंच जुबान बोलती थीं। उस ज़माने में वहाँ किसी औरत को यह साबित करने के लिए कि वह सचमूच औरत ही है, बेहद तंग स्कर्ट पहनना पड़ता था और हिन्दी फ़िल्मों की हीरोइनों की

तरह 'ऐक्ट' करना पड़ता था। वैसे भी, हिन्दी फ़िल्में और इन फ़िल्मों के बड़े-बड़े पोस्टर चारों तरफ़ फैले थे। उसने बताया कि आम तौर पर लोग सिनेमाघरों में ही हिन्दी फ़िल्में देखा करते थे। हाँ, फ्रेंच बोलने वाले कुछ रईस वीसीआर पर भी देखा करते थे। इत्तफ़ाक से उसकी नाव इस बार उसे लिए बिना ही चली गयी जिसके बाद उसे लगभग एक महीने तक इरान में तब-तक इंतज़ार करना पड़ा था जब तक कि उसकी कंपनी की अगली नाव नहीं आ गयी। इस दौरान वह अपने दोस्तों के साथ रहा, ऐसे दोस्तों के साथ जिन्हें ख़ुद भी हिन्दी फ़िल्मों का चस्का था।

अगले साल वह अपनी अगली खेप में मैंगलोर पहुँचा। यहाँ उसने दोबारा 'शोले' देखी। अपने इरानी दोस्तों की ख़ातिर-नवाज़ी के बदले में वह उनके के लिए कुछ करना चाहना था और इसी मक़सद से वह थिएटर के मैनेजर से पूछ बैठा कि क्या वह अपनी रील उसके हाथों बेचना चाहेगा। मालिक रील नहीं बेचना चाहता था क्योंकि उसकी रील बहुत अच्छी कॉपी थी। लेकिन वहाँ उसे एक ऐसे सिनेमा का पता मिल गया जो तंबू में चलता था और मंदी की मार झेल रहा था। उसका मालिक अपनी रील बेचने के लिए तैयार भी था। उसे याद है कि उसने बहुत कम क़ीमत दे कर वह रील ख़रीदी थी।

इसके बाद चावल और खाने-पीने की दूसरी चीज़ों के साथ उसका जहाज़ मैंगलोर से रवाना हुआ। मैंगलोर से पहले मुंबई और फिर कराची होते हुए वह वापस इरान पहुँचा और वह रील उसने अपने दोस्तों को दे दी। वे बड़े ख़ुश हुए। पर उन्हें यह समझ नहीं आ रहा था कि वह उस रील का क्या करें क्योंकि उनके पास प्रोजेक्टर तो था ही नहीं। दोस्तों ने उससे कहा कि अगर मुमकिन हो तो आगे से वह वीडियो कैसेट्स लाए क्योंकि जल्दी ही वे वीसीआर ख़रीदने जा रहे हैं। लेकिन उसने कहा कि हिन्दुस्तान में किसी को नहीं पता कि वीडियो कैसेट क्या बला है।

हालाँकि कराची प्रवास के दौरान उसने पाया कि 'शोले' के वीडियो कैसेट आसानी से उपलब्ध हैं। ये कैसेट उसने अपने दोस्तों को भेज दिए। उसके दोस्तों ने जवाबी तार से (जैसा मैं सोचता हूँ) उसे यह संदेश भेजा कि उन्होंने इरान में किसी आदमी के हाथ 'शोले' की वो रील बेच दी है और अगर मुमकिन हो तो वह रीलें ख़रीद कर उन्हें भेज दिया करे जिसकी क़ीमत वे बाद में अदा कर दिया करेंगे। इस तरह उसने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान से वीडियो कैसेटें और रीलें ख़रीद कर इरान में अपने दोस्तों के लिए ले जाना शुरू किया। बाद में उसने दोस्तों से क़ीमतें बढ़ा कर बतानी शुरू कीं ताकि इस प्रक्रिया में वह अपने लिए भी कुछ पैसे बना सके।

इरान में शाह का तख़्ता पलट हो जाने के बाद उसे और उसके दोस्तों को करारा झटका लगा। उसने बताया कि 1979 और 1980 के शुरुआती दौर में इरान में फ़िल्में दिखाना बहुत ही मुश्किल हो गया था। और चूँकि उसका जहाज़ पाकिस्तानी था इसलिए इस समय उनके लिए इरान जाना भी मुश्किल हो गया था। एक बार वह मुंबई से इरान जा रहा था (मुझे उस पोर्ट/क़स्बे का नाम याद नहीं है), जहाज़ पर ढेर सारा सामान लदा हुआ था, वह ख़ुद कई सारी फ़िल्में ले जा रहा था, लेकिन उसके जहाज़ को इरानी लहरों में उतरने की इजाज़त नहीं मिल पायी, लिहाज़ा उन लोगों को कुवैत जाना पड़ा। (इरान में क्रांति के बाद वह अकसर इराक़ के सफ़र पर निकल पड़ता।) इस तरह उसने इराक़ में भी फ़िल्में बेचनी शुरू कर दी।

बाद इसके इरान और इराक़ के बीच जंग का वो मुश्किल दौर भी आया। उसने कहा कि पाकिस्तान से इराक़ जाते हुए कई बार जहाज़ बमबारी/आगजनी की ज़द में आ जाते। पाकिस्तान से जहाज़ पर इराक़ के लिए खाने की चीज़ें ले जायी जाती थीं। लेकिन हर बार इराक़ पहुँच कर वह अपनी कैसेट्स भी बेचता था। उसने बताया कि उन वीडियों कैसेटों की इतनी ज़बरदस्त माँग हुआ करती थी कि कभी-कभी कराची पहुँच कर वह फ़िल्में पार्सल भी कर दिया करता था ताकि फ़िल्में पहले ही पहुँच जाएँ। लेकिन कई बार फ़िल्में नहीं पहुँचती थी। अबू को शक है कि उन पैकेटों को या तो पाकिस्तानी या फिर इराक़ी पोस्टमैन खोला करते थे और फ़िल्मों को अपने पास रख लेते थे।

जंग ख़त्म हो जाने के बाद वह कहीं ज़्यादा नियमित रूप से इरान जाने लगा। लेकिन अब भी वह खुले तौर पर फ़िल्में नहीं ले जा सकता था, जिस तरह से वो पहले ले जाया करता था। इसीलिए उसने अब एक बड़ा-सा अरबी चोग़ा पहनना शुरू कर दिया (मुझे मालूम नहीं कि इसे वह क्या कहता था) और उसी चोग़े में कैसेटें छिपा कर रखने लगा। कभी-कभी वह चावल के बोरों में भी कैसेटें छिपा दिया करता था। लेकिन उसका कहना है कि इस वक़्त तक कैसेटों की माँग काफ़ी कम हो गयी थी और लोग खुलकर फ़िल्म देखने में डरते थे। इसीलिए उसके दोस्त भी अब सिर्फ़ कुछेक कैसेटें ही लिया करते थे क्योंकि रीलें बेच पाना संभव नहीं था।

उसके अनुसार उसी दौरान सिंगापुर और मलेशिया से मद्रास और विशाखापट्टनम की ट्रिपें बढ़ गयी थीं। तमिल फ़िल्मों के बारे में उसे कुछ भी मालूम न था, मद्रास में उसका एकमात्र काम था इडली खाना। उसका मानना है कि मद्रास एक बेहद उबाऊ शहर है। लेकिन उसका एक दोस्त (जो मैं समझता हूँ एक श्रीलंकाई तमिल था) मद्रास से हमेशा कैसेटें ख़रीदा करता था और सिंगापुर ले जाया करता था। उसने बताया कि सिंगापुर या मलेशिया पहुँच कर वह इन फ़िल्मों की कई एक कॉपियाँ तैयार करवाता था और वापस हिंदुस्तान लौट कर उन्हें बेच दिया करता था। बाद में उसके इस दोस्त को एक नया ख़याल सूझा और उसने सिंगापुर से वीसीआर ख़रीद कर उन्हें हिन्दुस्तान में बेचना शुरू कर दिया। लेकिन एक रोज़ मद्रास में ऐसा करते हुए वह पकड़ लिया गया था और उसे बुरी तरह मार पड़ी थी जिसके बाद उसने यह धंधा ही छोड़ दिया।

अबू का कहना है कि वे लोग कई अन्य चीज़ों की भी ख़रीद-फ़रोख़्त किया करते थे। ज़्यादातर इलेक्ट्रॉनिक सामान की। उसने बताया कि सिंगापुर और मलेशिया में हिन्दुस्तानी रेशम और साड़ियों की ख़ूब धूम थी। इसीलिए कई वार वे साड़ियाँ ख़रीद कर इसे सिंगापुर में दूसरी चीज़ों के बदले में दिया करते थे। लेकिन वे ज़्यादातर लेन-देन पैसों का ही किया करते थे। एक बार बॉस्टन पहुँच जाने के बाद अबू ने इन कामों से ख़ुद को किनारे करने का फ़ैसला कर लिया। तब से अब तक वो अमेरिका में ही है। सड़कों और 'सब-वे' स्टेशनों पर मैंने कुछ स्पैनिश डीवीडी बेचने वालों से बातें करने की कोशिश की। लेकिन फिर वही ज़ुबान की दिक़्क़त। बहरहाल, ये तो पूरी तरह से बेतरतीब संवाद था। उम्मीद है और भी ऐसे बेतरतीब संवाद होंगे।

अनुवादः कमल कुमार मिश्रा